नियमसार, अन्तिम पैराग्राफ है न? फिर से लेते हैं। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना में द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की है तो दृष्टि करने को कहा है। इसके बिना सब पर्याय... यहाँ तो चार भाव आवरणसंयुक्त (कहा है)। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे तो उदयभाव हैं, विकार हैं, भोगी के भोग का मूल है। यह अब आयेगा। आहाहा! वह कोई धर्म नहीं। तथा उसके आश्रय से-कारण से शुभ करते-करते धर्म होगा, ऐसा नहीं, परन्तु तीन भाव जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक हैं, वह पर्याय है। पर्याय में निमित्त की अपेक्षा और निरपेक्षता आती है तो इतनी अपेक्षा है तो चार भाव को आवरणसंयुक्त कहा है अथवा क्षायिकभाव की पर्याय-दशा हो परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! शरीर की क्रिया तो कहीं रह गयी। अन्दर व्रत, तप, भक्ति के परिणाम तो कहीं रह गये। सूक्ष्म बात है, भाई! मूल बात जैनदर्शन की कोई अलौकिक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि चार भाव अर्थात् उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। इस क्षायिक में तो केवलज्ञानादि नवलब्धि। नवलब्धि (आ गयी)। आहाहा! वह भी पर्याय है। जिसे दृष्टि करनी है, उसे पर्याय पर लक्ष्य करना नहीं। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली शुरुआत करनी हो, उसे तो चार भाव से रहित अन्दर ज्ञायकभाव पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करने से दृष्टि होती है। आहाहा! कठिन बात है।

साधारण प्राणी भले छह खण्ड के राज्य में हो परन्तु वह समकिती है तो उस समकिती की दृष्टि द्रव्य पर है। वह अखण्ड को साधता है। आहाहा! बाह्य छह खण्ड को तो साधता नहीं, परन्तु पर्याय खण्ड है और भेद है, उसे भी नहीं साधता। आहाहा! समझ में आया? चार भाव का लक्ष्य छोड़ना क्योंकि वह मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये (यह शास्त्र) बनाया है। तुम सुनो, तुम्हें योग्य लगे तो ग्रहण करो। आहाहा! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का कहा हुआ मार्ग मुझमें है, परन्तु मेरी भावना द्रव्यस्वभाव पर है। आहाहा! दूसरी चीज़ पर्याय होती है, राग होता है, राग का निमित्त भी होता है, अन्दर में कर्म निमित्त हों, बाहर में भगवान की प्रतिमा आदि हो परन्तु वह कोई आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली भगवान चैतन्य का विलास, सहजात्म-स्वरूप का विलास जो आत्मा, सहज चैतन्य का विलासस्वरूप प्रभु है। आहाहा!

त्रिकाली द्रव्य जो है, वह सहज चैतन्य के विलासस्वरूप, चैतन्य के आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। चारित्र तो अभी बाद में है, बापू! सम्यग्दर्शन... आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय करके प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। पश्चात् द्रव्य का विशेष आश्रय करने से चारित्र उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से चारित्र नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? इस कारण इन चार भाव को आवरणसहित कहा है। आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं, इस कारण से (ऐसा कहा है)।

त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है... आहाहा! भगवान द्रव्यवस्तु अन्दर है। वह त्रिकालनिरुपाधि है। जिसमें उपाधि, कर्म का निमित्त और राग की उपाधि अन्दर है ही नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम वे उपाधि हैं, वे वस्तु में नहीं हैं। आहाहा! निरुपाधि भगवान आत्मा, जिसका स्वरूप ही निरुपाधि है। **ऐसे निरंजन...** जिसमें अंजन अर्थात् मैल / रागादि का भी अभाव है। **निज परम पंचम भाव...** आहाहा! सबेरे आया था न? कि मोक्ष की पर्याय को भी द्रव्य नहीं करता। आहाहा! गजब बात। दया, दान, राग का कर्ता तो आत्मा नहीं और जो कर्ता माने, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है। आहाहा! बात कठिन लगे, भाई!

यहाँ कहते हैं, **निरंजन निज परम पंचम भाव...** त्रिकाली निरंजन। ऐसे तो शुद्धात्मा की बात तो वेदान्त भी बहुत करता है। कबीर में भी बहुत बात आती है परन्तु यह (बात) नहीं है, ऐसी नहीं। सब एकान्त की बात है। आहाहा! यह तो परमात्मा एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में पारिणामिकस्वभावभाव वर्तमान में पूर्ण है। त्रिकाली की अपेक्षा से तो बाद में। वर्तमान में ही पूर्ण है। परमात्मा अनन्त गुण का कन्द / खान वर्तमान

में ही परमपारिणामिकभाव पूर्ण है। ऐसे परमपारिणामिकभाव की... देखो! आहा..! **भावना से...** क्षायिकभाव की भावना से और उदयभाव की भावना से नहीं। दया, दान, व्रत, की भावना से आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है... आहाहा! या चारित्र होता है, ऐसा नहीं है। चाहे तो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले परन्तु वह सब राग है। आहाहा! उसके आश्रय से भावना नहीं होती। आहाहा!

भावना तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है परन्तु उस उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय के आश्रय से वह भावना नहीं होती। ऐसी बात अब। कहाँ लोगों को... पंचम पारिणामिकस्वभाव भगवान आत्मा की भावना से। भावना शब्द से चिन्तन और कल्पना, वह नहीं। परमभाव परमात्मा द्रव्यस्वभाव की एकाग्रता, उसे ध्येय बनाकर... आहाहा! वस्तु के स्वभाव को ध्येय बनाकर अन्तर में एकाग्र होना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह द्रव्य में एकाग्र होने से होती है। आहाहा! अरे! लोगों को निवृत्ति कहाँ? अन्दर यह मूल चीज़।

वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' छहढाला में आता है। छहढाला, 'मुनिव्रत धार...' अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत। इसके लिये चौका बनाकर आहार (बनाया हो तो) तीन काल में ले नहीं। प्राण जाये तो भी एक पानी की बूँद इसके लिये तैयार की हो तो ले नहीं, ऐसी तो जिसकी क्रिया थी। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। समझ में आया? आहाहा! वहाँ पंच महाव्रत निरतिचार (पालन किये) परन्तु वह सब राग है। मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पे निज आतमज्ञान बिना लेश... आत्मज्ञान, राग से भिन्न भगवान ऐसा त्रिकाली आत्मा, आत्मज्ञान का अर्थ गुण का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान-ऐसा नहीं। निमित्त का ज्ञान, राग का ज्ञान, वह तो नहीं परन्तु पर्याय का ज्ञान और गुणभेद का ज्ञान, वह भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो, यह छहढाला में आता है न? आत्मज्ञान बिन... आत्मा जो चिदानन्द प्रभु है, उसे स्पर्श करना... आहाहा! उसका अनुभव करना। ऐसी चीज़ भावस्वरूप जो त्रिकाल है, उसमें एकाग्रतारूपी भावना करना। ऐसी बात है।

उस **भावना से पंचम गति में...** मोक्ष में उस भावना से **मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा (विराजते

हैं)। उनकी उपस्थिति में सन्त, आत्मध्यानी, ज्ञानी, अन्तर पंचम भाव की भावना से अभी भी मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त करते हैं परन्तु वह भाव यह। व्यवहार करते-करते सम्यग्दर्शन होता है और मोक्ष होता है या पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। अरे! यह समझने की दरकार भी नहीं। है अन्दर?

पंचम भाव की भावना से पंचम गति... आहाहा! पंचम गति अर्थात् सिद्ध / मोक्ष। **मुमुक्षु (वर्तमान काल में)...** मुमुक्षु उन्हें कहते हैं, जिन्हें परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा की भावना से परम आनन्दस्वभाव से प्रगट हुआ है और वह उपादेय त्रिकाल आत्मा को मानता है। पर्याय को भी उपादेय नहीं मानता, हेय मानता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले आ गया। समकिती संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय को परद्रव्य मानता है। शरीर, वाणी, मन, पैसा और धूल तो कहीं परद्रव्य रह गये, उनके साथ आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु अन्दर में राग आया, उसके साथ भी आत्मा को सम्बन्ध नहीं है परन्तु अन्दर में भावना हुई, शुद्ध परमपारिणामिकभाव की भावना हुई तो वह संवर और निर्जरा है। उस (भावना से) मुमुक्ष मोक्ष जाते हैं। है?

मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,... आहाहा! परन्तु फिर भी उस पर्याय के आश्रय से नहीं, उसे (पर्याय को तो) यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! अर..र..! पैसा, शरीर, धूल तो परद्रव्य है, उसके साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय में पंचम भाव की भावना से अन्तर में संवर और निर्जरा शुद्ध आनन्द का स्वाद आया, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे भी परद्रव्य कहा गया है। है? यह बात तो पहले चल गयी है। पहली ही ३८ गाथा में। सात तत्त्व परद्रव्य है। आहाहा! सबेरे भी आया था। द्रव्यस्वभाव वस्तु की द्रव्यदृष्टि कराने की बात है। लाख बार, करोड़ बार क्रियाकाण्ड करे, उसके साथ धर्म को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

यह एक ही परमात्मा पूर्ण स्वरूप से अन्दर विराजमान है, उसकी भावना अर्थात् अन्तर की एकाग्रता, उसका आश्रय करने से जो कोई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! उस परद्रव्य का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। परद्रव्य के आश्रय से मुक्ति नहीं होती। स्वद्रव्य पंचम भाव की भावना से मुमुक्षु को मुक्ति होती है। आहाहा! इससे चार भाव नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐसे धर्मी को अपनी पर्याय में कमजोरी से राग आता

है; (नहीं आता) ऐसा नहीं है। राग होता है परन्तु वह राग बन्ध का कारण है और जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, उस संवर, निर्जरा के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है, राग उत्पन्न होता है। त्रिकाली भगवान ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप प्रभु... आहाहा! उसका आश्रय करने से निर्विकल्पता उत्पन्न होती है और उसकी भावना-एकाग्रता करने से पंचम गति में-मोक्ष में मुमुक्षु जाते हैं। यह आया न? पंचम गति अर्थात् मुक्ति। पंचम भाव की भावना से पंचम गति को (प्राप्त करते हैं)। भाषा तो सादी है, भाव तो बहुत गम्भीर, भाई! अरे रे! जिन्दगी चली जाती है, उसमें यह बात अन्तर में दृष्टि नहीं की तो चौरासी के अवतार में भटक मरेगा, नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान काल में पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं। भले यहाँ (से) नहीं (जाते) परन्तु महाविदेह में वर्तमान में पंचम भाव की भावना से, त्रिकाल पंचम भाव की भावना वर्तमान एकाग्रता से मुमुक्षु जीव मोक्ष में जाते हैं। आहाहा! **(भविष्य काल में) जायेंगे...** भविष्य, जो वर्तमान से अनन्त काल है, तो उस सबमें एक ही सिद्धान्त है। पंचम भाव भगवान पूर्णानन्द को पकड़कर एकाग्रता होने से भविष्य में भी पंचम गति को प्राप्त करेंगे। आहाहा! **और (भूतकाल में) जाते थे।** अनन्त काल व्यतीत हुआ, उसमें भी जो मोक्ष में गये, वे अन्तर स्वभाव जो पूर्णानन्द प्रभु है, उसमें एकाग्र होकर (उसे) ध्येय बनाकर लीन होते हैं। भूतकाल में भी **पंचम भाव की भावना से पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं,...** आहाहा! यह कैसा मार्ग! एक ओर मन्दिर बनाना, रथयात्रा निकालना। कौन निकाले? सुन तो सही! यह तो सब जड़ की क्रिया होनी होती हैं, वे होती हैं। क्या आत्मा निकाल सकता है? आहाहा! क्या आत्मा मन्दिर बना सकता है? आत्मा राग बनाता (करता) है, ऐसा मानना वह भी मिथ्यादृष्टि का कर्तव्य है तो पर को मैं कर्ता हूँ, मैं मन्दिर बनाता हूँ, यह तो महामिथ्यादृष्टि है। गृहीत मिथ्यादृष्टि। पहला अगृहीत है। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में यह लिया है। उसका अर्थ टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि करते हैं। **(भविष्य काल में) जायेंगे और (भूतकाल में) जाते थे।** भूतकाल में इस पंचम भाव की भावना से मोक्ष में गये हैं। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली जो मोक्ष में गये, वे सब परमात्मस्वरूप त्रिकाल... 'घट घट अन्तर जिन बसै' वह परमात्मस्वरूप, जिन वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा है। उस परमात्मा का आश्रय करने से,

एकाग्र होने से भूतकाल में भी मोक्ष गये हैं, वर्तमान में भी जाते हैं और भविष्य में भी जायेंगे। आहाहा!

एक मार्ग है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' दो नहीं। यह एक ही पन्थ है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह श्रीमद् की आत्मसिद्धि में आता है। आहाहा! अरे! सुनने को मिले नहीं और इस जगत के रस में घुस गया। आहाहा! पैसा.. पैसा.. पैसा.. नहीं कहा था। दो अरब और चालीस करोड़। मुम्बई में अभी एक सेठ आया था। चिमनभाई! वैष्णव है, पचास करोड़ रुपये। व्याख्यान में आया था। बड़ा नाम सुनकर आवे परन्तु कुछ जँचे नहीं। पचास करोड़। उसका क्या नाम? रामदास।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ नहीं कहना महाराज के पास, ऐसा कि लोग सेठ कहते हैं। ऐसा कहे रामदास सेठ मुझे नहीं कहना। महाराज! आपके पास हम सेठ कहाँ हैं? घर की सब महिलायें श्वेताम्बर जैन। घर में सब स्त्रियाँ, लड़के की बहू, सब श्वेताम्बर जैन और लड़के तथा वे सब वैष्णव। पचास करोड़, और दो, चार, पाँच बहुत करोड़ की तो आमदनी है। एक तो अपने यहाँ भी है न जामनगर में? जामनगर में एक है न? अपने रामजीभाई का पुत्र नौकर है। यहाँ व्याख्यान में आया था। उसका क्या नाम? नाम भूल गये। साढ़े तीन करोड़ की एक वर्ष की आमदनी है। धूल। आमदनी, हों! अभी बढ़ानेवाला है। एक वर्ष की पाँच करोड़ की आमदनी का व्यापार बढ़ानेवाला है। धूल में भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं तुझे क्षयोपशम, संवर, निर्जरा हुई, उसका आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है, क्योंकि वह पर्याय है। कठिन बात, बापू! जैनधर्म में अभी तो गड़बड़.. बस! यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो.. व्रत करो, तप करो, अपवास करो.. करना.. करना.. करना.. यह करना, वह मरना है। मैं करूँ, राग का कर्ता होता है, वह तो स्वरूप की मृत्यु करता है। आहाहा! स्वरूप तो ज्ञातादृष्टा पंचम पारिणामिकस्वभाव है, उसे राग का कर्तापना सौंपना, वह पूरे चैतन्य को विकारी बनाने जैसा है। विकारी बनाना है। आहाहा! सूक्ष्म भाव है, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की वाणी साक्षात् परमात्मा महाविदेह में करते (कहते) हैं। महाविदेह में करते हैं, वह वाणी यह आयी है। आहाहा!

श्लोक-५८

(अब, ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं—)

(आर्या)

अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः ।
सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः ।।५८।।

(वीरछन्द)

किञ्चित् भी परिग्रह प्रपञ्च बिन, पञ्चाचार सहित विद्वान।
पञ्चमगति की प्राप्ति हेतु वे सुमरें पञ्चमभाव महान॥५८॥

श्लोकार्थ :— (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यरूप) पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित, ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए पंचम भाव का स्मरण करते हैं।।५८॥

श्लोक-५८ पर प्रवचन

अब टीकाकार के दो श्लोक।

अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः ।
सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः ।।५८।।

श्लोकार्थः—(ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यरूप)... शुद्ध चैतन्य की पर्याय, निर्मल वीतरागी पर्याय। **पाँच आचारों से...** पाँच वीतरागी पर्याय के आचरण से। **युक्त और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित,...** आहाहा! विकल्प का भी परिग्रह नहीं। शरीर का तो नहीं, आहाहा! **ऐसे विद्वान...** उसे विद्वान कहेंगे, कहते हैं। आहाहा! बाकी सब पढ़े उन्हें... आहाहा! एक विद्वान (शब्द) समयसार में आता है कि विद्वान निश्चय को, भूतार्थ को छोड़कर व्यवहार का आश्रय करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि विद्वान हैं। आया है न? श्लोक है न?

मुमुक्षु : भूतार्थ को तजकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : विद्वान कहा न। विद्वान होकर निश्चय के आश्रय की बात छोड़कर व्यवहार के कर्तव्य में पड़ा है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि संसार में भटकनेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : होंगे उस काल में। भगवान के समय। कुन्दकुन्दाचार्य के समय। तब तो इसमें लिखा गया है। अब ये आचार्य महाराज यह कहते हैं। ये आचार्य नहीं परन्तु मुनि हैं। टीकाकार पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं। तो कहते हैं कि विद्वान उसे कहते हैं... आहाहा! कि **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए...** आहाहा! सिद्धगति पंचम है। ये चार गति नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव से भिन्न सिद्धगति को प्राप्त करने... आहाहा! **पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** भगवान का स्मरण करते हैं, ऐसा नहीं लिया। भगवान का स्मरण करे तो वह विकल्प और बन्ध का राग है, संसार जहर है। आहाहा! (समयसार) मोक्ष अधिकार में लिया है, यह शुभभाव जो आता है, वह जहर का घड़ा है। गजब बात है, भाई!

मुमुक्षु : शास्त्र में ऐसा आता है कि शुभ से शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं आता। यह तो व्यवहार का कथन है। साधन से साध्य ऐसा कथन है। व्यवहारनय का कथन है। कथन जैसे घी का घड़ा कहने में कथन है। आहाहा! वैसे यह तो कथन बताने की बात है, वस्तु ऐसी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो उस कथन को मानना या नहीं मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाने में कथन भेद आये बिना नहीं रहता। चाहे जितना अधिक बुद्धिवाला हो। आठवीं गाथा में आता है न? आत्मा को समझाना है तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र जो वीतरागी पर्याय को प्राप्त, वह आत्मा है तो यह भेद हुआ, यह भी व्यवहार हुआ। समयसार की आठवीं गाथा। समझ में आया? यह भेद भी नहीं। वह तो समझाने के लिये भेद से कथन है। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन, भाई!

अरे, अनादि काल से भटक मरता है। नरक और निगोद। निगोद के दुःख का, नरक के दुःख का वर्णन प्रभु करते हैं। प्रभु! तेरे नरक के एक क्षण के दुःख करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से नहीं कहे जा सकते, प्रभु! तूने ऐसे दुःख भोगे हैं। एक इस

मिथ्याश्रद्धा के कारण (भोगे हैं)। श्रद्धा सुधारी नहीं। बाकी वर्तन इतना किया, महाव्रत और अणुव्रत और ऐसा, वैसा। इतना दान (दिया), इतनी दया, व्रत (किये), बारह-बारह महीने के अपवास.. आहाहा! इन सबमें धर्म माना। (वह तो) मिथ्यात्व का पोषण है। समझ में आया? यह सब नरक-निगोद का कारण है। यह अभी कलश में आयेगा।

परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित, ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति... यहाँ मुनि को लिया है। मुनि हैं, वे तो सर्वथा परिग्रह रहित हैं। अन्दर विकल्प का भी परिग्रह नहीं। राग के परिग्रह की पकड़ नहीं। पकड़ तो ज्ञायकस्वभाव की पकड़ है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव के अनुभव से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** विद्वान। आहाहा! भगवान का स्मरण करना तो छोड़ दिया। वह तो राग है, परन्तु राग का स्मरण करना, वह भी राग है; इसलिए छोड़ दिया और पर्याय का स्मरण करने पर उसमें भी राग होता है, इसलिए वह भी छोड़ दे। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य का स्मरण करने से पंचम गति का कारण उत्पन्न होता है। आहाहा!

दर्शनशुद्धि बहुत अलौकिक बात है। इसके बिना सब बातें चाहे जितने आचरण की और क्रिया का करे, वे सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! एक रहित शून्य। लाख-करोड़ शून्य करे परन्तु वे एक के बिना संख्या में नहीं गिने जाते। इसी प्रकार पंच महाव्रत और संसार, घोर नग्नपना और वनवास में रहना। यह श्लोक आता है। यह सब संसार है। आहाहा! अपना आत्मा अन्दर राग से रहित और पर्याय से रहित है, ऐसी चीज़ का अवलम्बन नहीं लिया और उसका आश्रय नहीं किया तो सब व्यर्थ है। आहाहा!

यह कहते हैं। **पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** प्रभु का स्मरण नहीं करना? प्रभु तू है। मोक्षपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। '**परदव्वादो दुग्गई**' प्रभु! तू हमारा स्मरण करेगा तो तुझे राग और दुर्गति होगी। तुझे चैतन्य की गति नहीं मिलेगी। आहाहा! इन सन्तों को जगत की कहाँ पड़ी है। नागा बादशाह से आगा। समाज संगठित रहेगी या नहीं, कुछ नहीं पड़ी है। समाज निन्दा और विरोध करेगी या नहीं, इसकी कुछ नहीं पड़ी है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गई**' अष्टपाहुड़ की १६वीं गाथा है। है न? यह कुन्दकुन्दाचार्य का अष्टपाहुड़ है। मोक्षपाहुड़,

हों! उसमें १६वीं गाथा। लो, यही आया पृष्ठ बदला वहाँ। १६ वीं गाथा '**परदव्वादो दुग्गई**' वहाँ चिह्न किया है '**परदव्वादो दुग्गई**' परद्रव्य से दुर्गति होती है। भगवान कहते हैं कि यदि तेरा लक्ष्य हमारे प्रति जायेगा तो तुझे राग होगा। वह चैतन्य की गति नहीं, वह तो दुर्गति है। गजब बात है। आहाहा!

'**सद्दवादो हु सुग्गई**' पंचम पारिणामिकभाव जो स्वद्रव्य है, उसके आश्रय से तुझे सुगति अर्थात् मुक्ति मिलेगी। है? '**इय णाऊण**' परद्रव्य से दुर्गति। पर का लक्ष्य करे, चाहे तो तीन लोक के नाथ की प्रतिमा और भगवान साक्षात् हो, परन्तु उनका लक्ष्य करेगा तो तुझे, परद्रव्य है तो राग ही होगा। इस चैतन्य ज्ञातादृष्टा की अपेक्षा से राग इसकी गति नहीं है, वह तो दुर्गति है। अर र! १६वीं गाथा है। '**इय णाऊण सदव्वे कुणह रई**' स्वद्रव्य में प्रेम कर, अन्दर आनन्द के नाथ में जा। आहाहा! '**विरइ इयरमि**' इतर अर्थात् अन्य द्रव्यों और पर्यायों से विरति कर, विराम पा। आहाहा! माल आया है, भाई! १६वीं गाथा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया न, स्मरण करना। भगवान का आश्रय, परद्रव्य का आश्रय करने से राग होता है। पण्डितजी को पढ़ने दो। यह सोलह।

मुमुक्षु : परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है, यह स्पष्ट (प्रगट) जानो, इसलिए हे भव्य जीवो! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य, उनसे विरति करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरति करो। मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा है। यहाँ तो हजारों शास्त्र देखे हैं न, करोड़ों श्लोक देखे हैं। आहाहा! श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक देखे हैं। पहले दुकान पर भी पढ़ते थे। छोटी उम्र। १९ वर्ष की उम्र से। ७० वर्ष हुए। पालेज में पिताजी की घर की दुकान है न। भरूच और बड़ोदरा के बीच में पालेज में दुकान है। अभी भी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। पालेज में दुकान चलती है, हमारे भागीदार के पुत्र हैं। बुआ के पुत्र भागीदार हैं। उनका पुत्र है। बहुत प्रेम है। आठ दिन रहे, सुना और जब जाने का निर्णय हुआ, कल तो महाराज जानेवाले हैं.. सब रोने लगे। तीनों लड़के रोने लगे। अरे रे! हमें सुनने का कहाँ मिलेगा... कहाँ मिलेगा... बापू! इस धूल में कुछ नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वर्तमान पंचमभाव का स्मरण करना। आहाहा! वर्तमान में विराजमान भगवान अन्दर पूर्ण है। आहाहा! जिसमें मोक्ष की पर्याय का भी अभाव, जिसमें संवर-निर्जरा धर्म की पर्याय का भी अभाव, ऐसा धर्मी द्रव्य जो तत्त्व है, उसका स्मरण करना अर्थात् एकाग्रता करना, वही धर्म और मोक्ष का कारण है। आहाहा!

श्लोक-५९

(मालिनी)

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः।
उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः ।।५९।।

(वीरछन्द)

ये समस्त शुभकर्म भोगियों के भोगों के मूल सदा।
अहो मुनीश्वर! परम तत्त्व अभ्यास कुशल है चित् जिनका॥
भव से मुक्ति प्राप्ति हेतु तुम उस समस्त शुभ को छोड़ो।
इसमें क्या क्षति ? सार तत्त्वमय उभय समय का सार भजो॥५९॥

श्लोकार्थः—समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है। परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर, भव से विमुक्त होने हेतु उस समस्तशुभ कर्म को छोड़ो और सारतत्त्वस्वरूप[१] ऐसे उभय समयसार को भजो। इसमें क्या दोष है ?।।५९।।

श्लोक-५९ पर प्रवचन

५९ वाँ श्लोक। ५९ है न

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः।

उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः ।।५९।।

श्लोकार्थः—समस्त सुकृत (शुभकर्म)... दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा यह शुभभाव। आहाहा! वह **समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** उसमें से तो भोग मिलेंगे। आहाहा! उस शुभभाव से तो भोग और बाहर की सामग्री मिलेगी। पैसा, लक्ष्मी, अरबोंपति, धूलपति, लक्ष्मीपति—ऐसा कहते हैं न? नरपति। पति किसका? तू पर का पति कहाँ से हुआ? आहाहा!

मुमुक्षु : तो करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। अन्तर भगवान है, उस पर दृष्टि करना, यह करना है। बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! परमेश्वर जिनेश्वरदेव का यह फरमान है कि सुकृत जो शुभभाव। सुकृत लिया है न? शुभभाव। दया, दान, व्रत, तप, अपवास, पूजा, भक्ति, रथयात्रा, लाखों-करोड़ों का दान, उसमें जो राग की मन्दता हो तो शुभभाव है। वह शुभभाव भोगियों के भोग का मूल है। उसमें तो भोग मिलेंगे। भोगियों के भोग का मूल है। आहाहा! उसमें आत्मा के आनन्द का अनुभव नहीं मिलेगा।

मुमुक्षु : दया, दान में पैसा देना या नहीं देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देता है?

मुमुक्षु : सेठ लोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ कौन दे? धूल भी नहीं देते। वह तो राग की मन्दता का भाव करे। लक्ष्मी जाती है, वह तो जाने की जड़ की क्रिया है। क्या वह पर को दे सके? अन्य द्रव्य, अन्य द्रव्य की पर्याय तीन काल में नहीं कर सकता। यह तो आ गया है। समझ में आया? आहाहा! यह हाथ ऐसे होते हैं, वह आत्मा से नहीं होते। अंगुली से नोट पकड़ना और उसे देना, वह क्रिया आत्मा की नहीं है। आहाहा! समझ में आया? हमें हीरा बताया था। वजुभाई हैं न? बहिन को (बहिनश्री को) इस भाद्र कृष्ण दूज को ६६वाँ वर्ष लगता है न? वजुभाई हैं, वे दस हजार का हीरा लाये। सम्मान करेंगे, (उससे) बहिन का सम्मान करेंगे। वजुभाई हैं। ये बैठे हैं। मुझे हीरा बताया था। ६६ छोटे-छोटे हीरा हैं। उनकी दस हजार की कीमत है। बहिन का सम्मान करेंगे। जन्मदिन, भाद्र कृष्ण दूज, गुरुवार। बहिन

को तो कुछ नहीं, वह तो मुर्दे जैसी खड़ी रहेंगी। दस हजार के हीरे से सम्मान करेंगे। वह तो शुभभाव है। शुभभाव है, वह धर्म नहीं। चार व्यक्ति सम्मान करनेवाले हैं। इतनी बात कान में पड़ी है।

मुमुक्षु : लोभ (राग) कम करे, उतना तो धर्म होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कम करे, उतना पुण्य है, निश्चय से तो पाप है। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव में आता है। आता है? योगीन्द्रदेव का (योगसार का ७१वाँ) श्लोक है। मुनिराज दिगम्बर सन्त। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवी जन सम्यग्दृष्टि को पुण्य को पाप कहे।' दुनिया माने, या न माने उसके घर रही। दुनिया की कुछ पड़ी नहीं है कि दुनिया माने और दुनिया प्रसन्न हो। वह प्रसन्न कहाँ से होगी? अनादि से मूर्खाई सेवन की है। आहाहा! और वर्तमान में भी राग से लाभ होता है, ऐसा माने तो मूर्खता का सेवन करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

समस्त... समस्त शब्द पड़ा है न? अकेले शुभभाव का एक प्रकार नहीं। शुभभाव के असंख्य प्रकार हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, नामस्मरण, गुणस्मरण, प्रभु का, अपने गुण-गुणीभेद का स्मरण, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय भेद का विकल्प, वह भी शुभभाव है। आहाहा! अरे! दुनिया को कहाँ जाना? अरे! इसे चीज़ जहाँ अन्दर प्रभु विराजता है...

'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सों, मतवाला समझै न॥'

अपने मत की मदिरा पीये हुए हैं, अपनी मान्यता की शराब पी है तो मत मदिरा के पान सों, मतवाला समझै न... अन्दर वस्तु भगवान पूर्णानन्द से भरी पड़ी है, उसका आश्रय करना, वह अज्ञानी मूर्ख नहीं समझता। आहाहा!

बनारसीदास, बनारसीदास पहले व्यभिचारी (शृंगारी कवि) आदि थे। पश्चात् सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं। 'घट घट अन्तर जिन बसै..' घट-घट अन्तर वीतराग आत्मा बसता है। वीतराग मूर्ति मुक्तस्वरूप ही अन्दर है। आहाहा! राग और कर्म का सम्बन्ध मानना, वह तो व्यवहार है। परमात्मा तो अन्दर राग और कर्म से रहित भिन्न, मुक्तस्वरूप विराजमान है। अबद्ध कहो, या मुक्तस्वरूप कहो। आहाहा! जो कोई अबद्धस्वरूप भगवान को जाने, अनुभव करे, उसे (समयसार की) १४-१५वीं

गाथा में कहा है कि वह जैनशासन का अनुभव है। बाकी राग का अनुभव, वह अन्यमत का अनुभव है, वह जैनशासन का अनुभव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

समस्त... समस्त शब्द पड़ा है न? असंख्य प्रकार के शुभभाव। आहाहा! मैं गुणी, मुझमें गुण भरे हैं – ऐसा विकल्प उठाना, वह भी शुभभाव है। आहाहा! शुभभाव के असंख्य प्रकारों में यह भी एक शुभभाव है। गजब बात है, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता की... आहाहा! यह तो भजन आ गया। हिम्मतभाई ने याद किया था।

'प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम....' हे प्रियनाथ! तू पर की आशा किसलिए करता है, नाथ? आहाहा! 'प्रभु मेरे सब बातें तुम पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम, किस बात से तू अधूरा।' प्रभु! तू किस बात से अधूरा है कि पर की और राग की और पुण्य की आशा करता है? आहाहा! यह भजन है। समझ में आया? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' सब बातें पूरा। आनन्द में पूर्ण, ज्ञान में पूर्ण, शान्ति में पूर्ण, वीतरागभाव से पूर्ण, स्वच्छता से पूर्ण... आहाहा! 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, तू किस बात अधूरा।' प्रभु! तू किस बात से अधूरा है कि पर की आशा करता है। आहाहा! कपूरचन्दजी! ऐसी बात है।

यह यहाँ कहते हैं **समस्त सुकृत (शुभकर्म)...** णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं – ऐसा करना, वह भी शुभविकल्प राग है। आहाहा! प्रभु! वीतरागमार्ग कोई अलग चीज़ है। अरे! दुनिया को सुनने मिलता नहीं और बाहर के आचरण और यह क्रिया की, यह क्रिया की, यह क्रिया की। आहाहा!

'क्षण क्षण भावमरण' – श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं। तैंतीस वर्ष में देह छूट गयी। श्रीमद् राजचन्द्र। सोलह वर्ष में मोक्षमाला बनायी। सोलह वर्ष की देह की उम्र, हों! आत्मा की तो उम्र है नहीं, आत्मा तो अनादि-अनन्त है। सोलह वर्ष की उम्र में ऐसा कहा... आहाहा! 'तू क्यों भयंकर भाव मरण प्रवाह में चकचूर है?' प्रभु! राग और पुण्य के परिणाम मेरे और वह मेरा कर्तव्य है, इस (मान्यता में) क्षण-क्षण भयंकर भाव मरण में... प्रभु! तेरा क्षण क्षण भाव मरण होता है। ज्ञातादृष्टा का भाव छोड़कर इस राग का कर्ता होता है, नाथ! तेरे जीवन की मृत्यु होती है। डॉक्टर! ऐसी बात है। आहाहा! सोलह वर्ष में। बहु पुण्य पुंज प्रसंग से... है न? यह सोलह वर्ष की उम्र में बनाया।

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला।
तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला॥

प्रभु! मनुष्य भव मिला और भवरहित तेरी दृष्टि नहीं हुई। प्रभु! तूने जीवन में क्या किया? आहाहा!

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला।
तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला॥

यह क्या कहते हैं? इसमें गम्भीरता है। सोलह वर्ष में बहुत क्षयोपशम था। हिन्दुस्तान में धर्मी के नाम से ऐसे क्षयोपशमवाला कोई नहीं था, ऐसा क्षयोपशम। 'भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला।' यह क्या कहते हैं? प्रभु! तूने राग की, प्रेम की, प्रीति में राग की एकाग्रता में चक्कर मारे, ऐसे.. ऐसे.. ऐसे तो उस चक्कर में खड़ा रहेगा तो गिर जायेगा। तूफान ऐसे चक्कर मारता है न? चक्रवात में ऐसे ही खड़ा रहेगा तो गिर जायेगा, परन्तु चक्कर में ऐसे एक उल्टा चक्कर मार दे, गुलाँट मार दे तो खड़ा रह जायेगा। क्या कहा, समझ में आया?

(श्रीमद्) सोलह वर्ष में कहते हैं। 'भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला॥' राग की एकाग्रता और राग से धर्म होगा और पर्याय के आश्रय से धर्म होगा, यह मिथ्यात्व है। संसार चक्र का एक फेरा तूने (नहीं) मिटाया। एक बार गुलाँट खा जा। आहाहा! यह पर्यायबुद्धि और रागबुद्धि छोड़कर त्रिकाली द्रव्यबुद्धि कर, तो एक चक्र में तेरे भव का अन्त आ जायेगा। अरे! प्रभु! क्या हो?

अभी अरबोंपति लोग बहुत हैं। अमेरिका में तो अरबोंपति के ढ़ेर हैं। सब अशान्ति। अभी कहते हैं, अरे! इसमें कहीं शान्ति नहीं। अब क्या करना? फिर मुम्बई में कितने ही बाबा होते हैं। हरे कृष्ण.. हरे कृष्ण.. (करते हैं)। मुम्बई जाते हैं, तब बहुत बाबा हरे कृष्ण.. हरे कृष्ण.. (करते हैं)। उनकी यह दशा है। हरे कृष्ण.. हरे कृष्ण.. करे, वह विकल्प और राग है। आहाहा!

कर्म कृशे, सो कृष्ण कहते हैं। भगवान आत्मा .... कृष्ण उसे कहते हैं कि जो अज्ञान को कृश अर्थात् छेद करके नाश कर दे। आहाहा! 'कर्म कृशे, सो कृष्ण कहिये, निजपद रमे, सो राम कहिये।' अपने निज आनन्दस्वरूप में रमे, वह राम है और राग में

रमे, वह हराम है। आनन्दघनजी में आता है। श्वेताम्बर में आनन्दघनजी हुए, उनका श्लोक है। यहाँ तो सब देखा है। हजारों श्लोक श्वेताम्बर के, दिगम्बर के देखे हैं। उसमें यह आया है, 'कर्म कृशे, सो कृष्ण कहिये।' राग का नाश करे और अपने स्वभाव की प्रतीति करके अनुभव करे और दशाशुद्धि करे वह कृष्ण है। आहाहा!

'निजपद रमे, सो राम कहिये।' रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे हैं। तो तू भी राम है, परन्तु राम कैसा? निजपद आनन्द के नाथ में अन्दर रमे। वह 'निजपद रमे, सो राम कहिये, राग में रमें, सो हराम कहिये।' ऐसी बात है, मणिभाई! सुनना कठिन पड़े, बापू! सब खबर है। दुनिया की खबर नहीं?

यहाँ तो मुनिराज कहते हैं, दिगम्बर सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (कहते हैं)। आहाहा! **समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** आहाहा! धर्मी के धर्म का वह मूल नहीं है। आहाहा! शुभभाव का कर्ता होना और शुभभाव आना, उसका फल तो भोगियों के भोग हैं। उसमें कोई आत्मा-वात्मा नहीं मिलता। बाहर की धूल मिलेगी। पाँच-पचास करोड़ धूल। उस भोगियों के भोग का मूल शुभभाव है। धर्मी के धर्म का मूल शुभभाव नहीं। उसमें आया न? आहाहा! दिगम्बर सन्तों को जगत की कुछ पड़ी नहीं है। समाज संगठित रहेगा या नहीं, वह मानेगा या नहीं, वह उसके घर रहा। मार्ग यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह प्रसिद्ध करते हैं। समाज मानो, न मानो। बहुत लोग हों तो सत्य है और थोड़े माने तो सत्य नहीं। ऐसा नहीं है। सत्य को माननेवालों को संख्या की आवश्यकता नहीं है। आहाहा!

सुकृत... आहाहा! मुनिराज को दुनिया की दरकार है? **सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** उसमें तो पाप और लक्ष्मी और धूल मिलेगी। आहाहा! और उस ओर वासना में तेरा लक्ष्य जायेगा, वह अकेला पाप है। लक्ष्मी मेरी है, ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ की है। जीव का अजीव है? अजीव का अजीव है। वह जीव का अजीव हो गया? आहाहा! और वह अजीव मिला है, वह शुभभाव से मिला है, ऐसा कहते हैं। वह चीज़ भोगियों के भोग का मूल है। पन्नालालजी! तुम्हारे रतनचन्दजी कब आयेंगे? आनेवाले अवश्य हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये। रतनलाल कलकत्ता। इनके भाई हैं न? काका के लड़के। काका-दादा के लड़के कहलाते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! यह **(शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** यह भोग-शुभभाव तो धर्म का नाश करनेवाला है। यह शुभभाव, परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में मोक्ष अधिकार में कहते हैं, यह शुभभाव जहर का घड़ा है; प्रभु (आत्मा) अमृत का समुद्र है। प्रभु आत्मा अमृत का समुद्र है। आहाहा! अमृत से लवालब भरा हुआ है। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़ती है। माने, न माने जगत स्वतन्त्र है। परमात्मा का मार्ग तो यह है। आहाहा!

परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर,.. परमतत्त्व भगवान आत्मा परमतत्त्व। संवर, निर्जरा से भी पार तत्त्व। ऐसे **परमतत्त्व के अभ्यास में..** परमतत्त्व के अभ्यास में। आहाहा! **निष्णात चित्तवाले...** निष्णात अर्थात् जाननेवाले - प्रवीण। **परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर, भव से विमुक्त होने हेतु...** भव से विमुक्त होने के लिये **उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो...** आहाहा! पहले दृष्टि में से छोड़ो, रुचि छोड़ो। पश्चात् स्थिरता करके अस्थिरता को छोड़ो। छोड़ने के दो प्रकार हैं। दृष्टि में से शुभभाव की रुचि छोड़ो। आहाहा!

शुभ कर्म को छोड़ो और सारतत्त्वस्वरूप ऐसे उभय समयसार को भजो। समयसार आत्मा, वह सारभूत तत्त्व है। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण, वह सारतत्त्व है। उभय समयसार। कारणपरमात्मा त्रिकाल और कार्यपरमात्मा, सर्वज्ञ परमात्मा - दो को भजो। आहाहा! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)